ISSN: 2395-7852

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

Volume 11, Issue 2, March 2024

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

IMPACT FACTOR: 7.583

| www.ijarasem.com | ijarasem@gmail.com | +91-9940572462 |

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 7.583 | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 11, Issue 2, March 2024 |

भारतीय लोक साहित्य में जीवन मूल्य और संस्कार

Dr. Sohan Raj Parmar

Professor in Hindi Department, Government PG College, Barmer, Rajasthan, India

शोध सार- लोक साहित्य का सम्बन्ध उस साहित्य से है जिसकी रचना 'लोक' करता है। लोक साहित्य उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव। इसलिए उसमें जन-जीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समय और प्रकृति सभी कुछ समाहित है।डॉ० सत्येन्द्र के अनुसार- "लोक, मानव समाज का वह वर्ग है, जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृति, धर्म, रीति-रिवाज, कला साहित्य एवं सामाजिक आकांक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन लोक साहित्य के माध्यम से ही होता है। लोक जीवन की जैसी सरलतम नैसर्गिक अनुभूतिमयी अभिव्यंजना का चित्रण लोकगीतों व लोक-कथाओं में मिलता है, वैसा अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। लोक-साहित्य में समूह का साझा हृदय बोलता है। प्रकृति स्वयं गाती गुनगुनाती हैं। लोक-साहित्य में निहित सौंदर्य का मूल्यांकन सर्वथा अनुभूतिजन्य है। साहित्य की सार्थकता इसी में है कि वह कितनी सूक्ष्मता और मानवीय संवेदना के साथ सामाजिक घटकों को उद्घाटित करता है। साहित्य, संस्कृति का संरक्षक और भविष्य का पथ प्रदर्शक है। संस्कृति द्वारा संकलित होकर ही साहित्य 'लोकमंगल' की भावना से समन्वित होता है। इसके कल्याण में समस्त मानव समाज का कल्याण निहित है।

मूल शब्द- अभिव्यंजना, लोक-साहित्य, समाज, सभ्यता, संस्कृति।

परिचय- लोक साहित्य मानव विकास की एक लम्बी कहानी है। लोक साहित्य बहुधा अलिखित ही रहता है और अपनी मौखिक परंपरा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आगे बढ़ता है। इस साहित्य के रचयिता का नाम अज्ञात रहता है। 'लोक' का प्राणी जो कुछ कहता - सुनता है, उसे समूह की वाणी बनाकर और समूह से घुल-मिलकर ही कहता है। लोक भाषा के माध्यम से लोक चिंता की अकृत्रिम अभिव्यक्ति, लोक साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है। महाभारत और रामायण इसके प्रबल प्रमाण है। राम और श्रीकृष्ण विषयक लोक गाथाएं लोक जीवन में प्रचलित थीं।

प्रकार

लोक-साहित्य के मुख्यतः चार भेद कहे जाते हैं; लोक-गीत, लोक-गाथा, लोक-कथा और लोक नाट्य लोक गाथा और लोक कथा में भेद इतना ही है कि लोक गाथा एक लम्बे आख्यान- गीत के रूप में चलती है और इसमें प्रबन्ध योजना गाथा-प्रध नन होकर रस-प्रधान होती हैं। जबकि लोक कथा गद्यात्मक होने के साथ-साथ कथा प्रधान या दूसरे शब्दों में घटना प्रधान हुआ करती है। लोक नाट्य जनसुलभ रंगमंच को दृष्टि में रखकर आगिक और वाचिक अभिनय पर आधृत स्वांग या लीला तक सीमित रहता है। इसमें सामायिकता का विशेष ध्यान रहने के कारण स्थायी प्रभाव डालने की क्षमता नहीं होती है। लोक कथाओं और लोक गाथाओं में कथा - शिल्प ही प्रमुख रहता है, केवल लोक-गान ऐसा प्रकार है, जिसमें अपने समग्र रूप में शिल्प-विधान विकसित हो सकता है, इन चारों प्रकार के रूपों में शिल्प-विधान के ये अंग समान रूप से अपेक्षित हैं।

लोकगीत

वास्तव में लोकगीत मानव हृदय के सहज उद्गार है जो वह सुख में उल्लासित होकर दुःख में दुःखी होकर समय-समय पर अभिव्यक्त किया करता है। इन लोकगीतों में हमारे समाज के विविध क्रिया-कलापों, विभिन्न अवस्थाओं, प्राकृतिक गतिविधियों व सामूहिक रूपरेखा, राजनीतिक चेतना, जीवन के संघर्ष हर्ष उल्लास साथ ही लय-ताल व सुर का हृदय ग्रही रूप देखने को मिलता है। उपयोगिता के आधार पर लोक गीतों के विभिन्न प्रकार है। संस्कार गीत ऋतु गीत, श्रमगीत, जातिगीत इत्यादि अन्य प्रकारों में विषय प्राय: सामाजिक ही रहता है। अतः किसी समाज का स्पष्ट स्वरूप इन गीतों में दिखता हैं।

प्रवृत्तियाँ

लोकसाहित्य की जो अपनी कुछ विशेष प्रवृत्तियाँ हैं; वे उतनी ही प्राचीन हैं, जितना प्राचीन यह साहित्य हैं। इन प्रवृत्तियों की पुष्टि को ही विशाल एवं विभिन्न रचना कराने का श्रेय है। सुविधा के लिए इन्हें निम्नलिखित प्रकारों में बाँटा जा सकता है :

देवी देवताओं एवं प्राकृतिक उपलब्धियों पर आधारित साहित्य

आदिकालीन मानव के प्रकृतिप्रदत्त विभिन्न कल्याणकारी परिणामों से प्रभावित होने के कारण उनपर जो विश्वास आरोपि किया इससे संबद्ध साहित्य इसके अंतर्गत आता है। इसमें भक्ति एवं भय दोनों प्रकार की भावनाएँ सन्निहित होती हैं देवी- देवताओं की पूजा के लिए रचित तथा अंधविश्वासों से संबद्ध साहित्य (टोना टोटका, मंत्र एवं जादू इत्यादि) इसी के अंतर्गत है। इनमें कुछ विश्वासों को आंचलिक और कुछ को व्यापक महत्व दिया जाता है। स्थानीय उपलब्धियों पर स्थानीय और व्यापक पर व्यापक रचनाएँ मिलती हैं। जब भी ग्रामीण कोई शुभ कार्य (जन्म से लेकर मरण तक के सभी संस्कार तथा खेती बारी फसल की पूजा, गृहनिर्माण, कूपनिर्माण, मंदिर एवं धर्मशाला का निर्माण और परमार्थ संबंधी अन्य कार्य) प्रारंभ करते हैं तो उससे संबद्ध देवी-देवताओं को प्रसन्न

करने के लिए जिन गीतों अथवा मंत्रों का प्रयोग होता है वे सब इस साहित्य में आते हैं। रोगों के निदान के लिए भी बजाय औषधि के गीतों एवं मंत्रों का प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए शीतला माता के गीतों को लिया जा सकता है। अलग-अलग देवी देवताओं के लिए अलग-अलग मंत्र, गीत, पूजन एवं भोग आदि की सामग्रियों पता नहीं कब से निर्धारित की जा चुकी हैं। इन्हीं के अनुसार गीत एव मंत्र तो बदलते ही हैं. साथ ही पुजारी भी बदलते रहते हैं।

लोकाचार के लिए रचित साहित्य

इसके अंतर्गत आचार-विचार एवं व्यावहारिकता तथा विभिन्न लोकमान्यताओं से संबद्ध साहित्य आता है। आचार-विचार के लिए रचित साहित्य में भावनाओं और मान्यताओं का प्रवेश है किंतु व्यवहार के लिए रचे गए साहित्य में यह बात कम देखने को मिलती है। व्यवहार की विशेषता लोकसाहित्य में मुख्य रूप से देखने को मिलती है। आपसी व्यवहार की बात तो जाने दें, यहाँ साँप को भी दूध पिलाया जाता है। वृक्ष (बरगद, पीपल) को भी बाबा कहा जाता है, और बदली तथा नदियाँ बहन का रूप धारण करती हैं। इसी तरह अनेक अमानवीय तत्वों से तथा हिंसक जंतुओं से संबंध जोड़कर सारी सृष्टि को एक रूप में बाँधा गया है। इस संदर्भ में रचे हुए साहित्य का मूल उद्देश्य व्यावहारिकता के आधार पर सरल एवं सुखी जीवन व्यतीत करना है। यही कारण है कि जनजीवन एक जटिल रिश्ते में बँधा हुआ है जिसकी दीवार को भीषण रूप से व्याप्त जातीय भेदभाव भी तोड़ नहीं सके हैं। दादी दादा, भाई बहन आदि के रिश्ते पूरे गाँव में बिना किसी जातीय भेदभाव के चला करते हैं। विभिन्न अवसरों के लिए प्रचलित लोकाचार भी इसी विधा के अंग हैं।

वैज्ञानिकता पर आधारित साहित्य

इस साहित्य के अंतर्गत ऋतुविद्या, स्वास्थ्यविज्ञान, कृषिविज्ञान एवं शकुन आदि से संबद्ध साहित्य आता है। लोकजीवन में इस प्रकार के साहित्य को आधुनिक वैज्ञानिक युग में काफी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इनमें पूर्वाचार्यों द्वारा निर्धारित अनुभूमियों, नियमों एवं तत्सम्बंधी उपदेशात्मक बातों का समावेश होता है। यह मान्यताएँ प्रायः परीक्षा की कसौटी पर खरी उतरती है, किंतु साथ ही कुछ अपवाद भी हैं। ऋतुविज्ञान के अंतर्गत अतिवृष्टि, अनावृष्टि एवं अल्पवृष्टि के कारणों तथा उत्पन्न क्षतियों और उनसे बचने के उपायों की ओर संकेत किए गए हैं। इस प्रकार के वैज्ञानिक साहित्य के आधार परंपरागत अनुभव ही होते हैं। चूँकि वह अनुभव बहुत पक्के होते हैं इसलिए लोकगीतों की भाँति इनके बनने बिगड़ने की संभावनाएँ कम हुआ करती हैं। यही दशा कृषिविज्ञान के लिए रचे गए साहित्य की है। इसके अंतर्गत खेती से संबद्ध प्रायः आवश्यक बातें कह दी गई हैं। खेत की जुताई किस तरह हो, किस प्रकार के खेत में किस प्रकार की बुआई की जाए, बीज की मात्रा कितनी हो, सिंचाई कब की जाए, निराही एवं गुड़ाई कब की जाए तथा किस समय फसल की कटाई हो, यह सब बातें तो वैज्ञानिक साहित्य के अंतर्गत आती ही हैं, इनके अतिरिक्त फसल सम्बंधी रोगों तथा उपचारों का भी वर्णन मिलता है।

कृषि कार्यों में काम आनेवाले उपकरणों तथा बैलों की पहचान आदि पर भी भारी मात्रा में साहित्यरचना की गई है। बैलों के अतिरिक्त अन्य पालतू पशुपक्षियों के बारे में भी प्रचुर संकेत मिलते हैं। बैलों के बद सार्वजनिक साहित्य, घोड़ों की पहचान के संबंध में प्राप्त होता है। चूंकि आधुनिक वैज्ञानिक वाहनों के कारण अब घोड़े कम रखे जाते हैं इसलिए इस प्रकार के साहित्य का धीरे धीरे अभाव होता जा रहा है। गाँव में ट्रैक्टरों के पहुँच जाने से बैलों को पहचान के बारे में लिखे गए साहित्य की भी आगे शायद यही दशा होगी। अन्य पालतू पशुओं में गाय, भैंस एवं कुत्तों की चर्चा आती है, किंतु इनपर नाम मात्र के लिए संकेत किया गया है। पक्षियों में तोता, मैना, कौआ, मुनियाँ, मोर, कोयल तथा कबूतर आदि के बारे में संकेत दिए गए हैं। ग्रामीणों के उपयोग में जितने प्रकार के पशुपक्षी आते हैं उन सबकी पहिचान एवं उनसे होनेवाले लाभ-हानि के बारे में इस साहित्य के अंतर्गत संकेत प्राप्त होते हैं।

स्वास्थ्य विज्ञान में विभिन्न रोगों के लक्षण और उनसे बचने के उपाय तथा औषधियों की ओर संकेत मिलता है। कौन सा रोग क्यों उत्पन्न होता है तथा किन आचरणों से रोग उत्पन्न नहीं होता या दूर हो जाता है आदि बातें इसे अंतर्गत आती हैं। साथ ही स्वास्थ्यप्रदायिनी दिनचर्या के लिए कुछ आदेश भी दिए गए हैं। जड़ी बूटियों की पहचान, उनके उपयोग तथा इससे उत्पन्न लाभ-हानि की चर्चा भी इस विभाग के विषय हैं। इस तरह के संकेत प्रायः आदेश के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं और वे पद्यों में हैं।

यही विधा कृषिविज्ञान एवं शकुनविज्ञान के लिए रचे गए साहित्य में भी अपनाई गई हैं। शकुनविचार संबंधी साहित्य में मुख्य रूप से यात्रा आरंभ करने के लिए कालक्रमानुसार शुभ लक्षणों को देखते हुए या तो आदेश दिए गए हैं या अपशकुनों के कारण यत्रारंभ के लिए मनाही की गई है। यदि यात्रा बहुत ही आवश्यक हो और दिनों की गणना में उसका समय अनुकूल न पड़ता हो, तो उससे बचने के लिए उपाय बताए गए हैं। ऋतुओं, मानव लक्षणों एवं पशुपक्षियों की विभिन्न हरकतों द्वारा भी शकुन-अपशकुन की जानकारी इस प्रकार के साहित्य के अंतर्गत कराई जाती हैं। जैसे वर्षा काल में घर नहीं छोड़ना चाहिए, मुंडेरे पर यदि प्रातः काल कौवा बोले तो उसे किसी प्रिय जन के आगमन की सूचना समझनी चाहिए, इत्यादि ।

जातीय लोक साहित्य

संपूर्ण लोक साहित्य का एक सर्वमान्य रूप तो होता ही है किंतु साथ ही विभिन्न जातियों की परंपरागत संस्कृति पर आधारित साहित्य भी होता है। इनमें उन जातियों के निजी देवी-देवता, कुल देवता के आदेश तथा आचार्यों एवं संत महात्माओं द्वारा बताए गए नियम, उपनियम और उनकी वाणी शामिल होती है। विभिन्न जातियों जैसे नाई, धोबी, अहीर, चमार, कुर्मी, कोयरी, नोनियाँ, बार भाट आदि एवं वन्य तथा अन्य जातियों की अलग-अलग संस्कृति, जातीय लोकसाहित्य के अंतर्गत आती है। यदि यह कहा जाए कि कहीं का संपूर्ण लोकसाहित्य वहाँ की विभिन्न जातियों की सामूहिक संस्कृति का प्रतीक होता है और अनुपयुक्त नहीं होगा। जातीय साहित्य को निकाल देने पर लोकसाहित्य का जो रूप बच जाएगा, वह उसका सच्चा प्रतिनिधित्व नहीं करेगा।

लोक साहित्य की रचनास्थली

इस साहित्य की रचनास्थली विशिष्ट साहित्य की रचनास्थली से भिन्न होती है। यह लोकसाहित्य की ही विशेषता है कि उसके किसी

भी प्रकार का निर्माण एकांत में नहीं होता। प्रायः वे सभी स्थल उक्त साहित्य के रचनाकेंद्र होते हैं जहाँ समय समय पर उसे प्रेमी अथवा आवश्यकताओं से प्रेरित ग्राम्य जन जुटा करते हैं। इसीलिए ऐसा कभी नहीं कहा जा सकता कि लोकसाहित्य के अंग का आज जो रूप है वही कल भी था और आगे भी बना रहेगा। यदि हम कहें कि लोकसाहित्य की प्रमुख रचनास्थली चौपाल एवं आँगन है तो बेजा नहीं होगा। चौपालों में प्रायः अवकाश के समय गाँव के लोग एकत्र हो जाते हैं। तरह-तरह की बातें चलती हैं। रीतिरिवाजों की चर्चा, धर्मचर्चा, कथा-कहानियाँ, खेती बारी की बात तथा लोकगीत आदि समय-समय पर चौपालों को मुखरित करते रहते हैं। वर्तमान काल की स्थानीय प्रमुख घटनाएँ भी कुछ दिनों तक वार्ता के लिए आधार बनी रहती हैं। इन सबके निचोड़ रूप में जो सामग्री जीवन पा जाती है वही कुछ दिनों बाद स्थानीय साहित्य में शामिल हो जाती हैं। यदि महत्व अधिक हुआ तो ऐसी रचनाओं का प्रचार बढ़ जाता है और वे एक चौपाल से दूसरी में तथा एक गाँव के दूसरे गाँव में जाकर अपना क्षेत्र व्यापक बनाती रहती हैं। इस प्रकार वे रचनाएँ कुछ वर्षों में विस्तृत लोकसाहित्य के भंडार में सम्मिलित हो जाती हैं। यही बात आँगन में रचे गए साहित्य पर लागू होती है जहाँ गाँव की महिलाएं समय-समय पर एकत्र होती हैं। इस तरह पुरुषों एवं स्त्रियों का साहित्य जन्म से ही पृथक-पृथक होता है। चौपालों एवं आँगनों के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे स्थान हैं जहाँ इस साहित्य की विभिन्न विधाएँ निर्मित होती हैं। खेतों में निराई अथवा कटिया करते समय, डाँठ के गुटुर ढोते समय, अन्य सामूहिक मजदूरी करते समय, तीर्थ अथवा मेला यात्रा में, जाड़े में सायंकाल अलावों के पास पर्वा एवं सांस्कारिक आयोजनों के समय अथवा संक्षेप में यह कहिए कि जब और जहाँ ग्रामीण स्त्री पुरुषों के जुटाव का अवसर आता है तब और तहाँ लोकसाहित्य का निर्माण होता रहता है।

लोक साहित्य का जीवन

ऐसा नहीं कहा जा सकता कि भूतकाल में रचा गया सभी लोकसाहित्य जीवित है और आज जिनका निर्माण हो रहा है उनका अंत कभी नहीं होगा। सच तो यह है कि इस साहित्य की विधाएँ युगप्रभाव को स्वीकार करके अपना रूप बराबर बदलती रहती हैं। इधर पचास वर्ष के भीतर रचे गए साहित्य को देखने से यह बात स्पष्ट भी हो जाती है। इस अवधि में गाँवों को जितनी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ प्राप्त हुई हैं, उनमें अधिकांश का समावेश लोकसाहित्य में हो चुका है। प्राचीन लोकसाहित्य में आए जादू के उड़न खटोले को छोड़कर इस युग के लोकसाहित्य ने हवाई जहाज को स्वीकार किया है। वैसे लोकसाहित्य में बैलगाड़ी, घोड़ा, ऊँट, हाथी तथा नौका आदि वाहन अब भी जीवित हैं किंतु मोटर एवं रेलगाड़ी ने भी अपना स्थान बना लिया है। वर्तमान काल में होनेवाले नव निर्माणों को भी उक्त साहित्य में स्थान मिलता जा रहा है। इन साहित्यिक रचनाओं के साथ वे सभी लक्षण भी लगे हुए हैं जो उन्हें दीर्घ जीवन प्रदान करते हैं। प्रायः विद्वान् लोग यह कहा करते हैं कि यदि विस्तृत लोकसाहित्य का संग्रह नहीं कर लिया गया तो उनका लोप हो जाएगा। बात सही है, क्योंकि युगप्रभाव के कारण प्राचीन रचनाएँ अनुपयुक्त प्रतीत होने लगती हैं फिर धीरे धीरे लुप्त हो जाती हैं, जैसा कि इस समय हो भी रहा है। सिनेमा के गीतों ने गाँवों में अपना स्थान बना लिया है जिससे लोकगीत क्षीणता को प्राप्त हो रहे हैं। शिक्षा का प्रसार होने के कारण भी गाँवों की बोलियों में गीत गानेवाले पुरुषों एवं स्त्रियों का अभाव होता जा रहा है। ऐसा लग रहा है कि कुछ दिनों में विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गाए जानेवाले प्राचीन लोकगीतों का लोप हो जाएगा और उनके स्थान पर नवीन गीत स्थान पाएँगे या यदि इच्छा हुई तो लोकसाहित्य के संग्रहों का देख-देख कर पढ़ी लिखी स्त्रियाँ गीत गाकर काम चलाएंगी। आटा पीसनेवाली विद्युत् चक्की गाँव में पहुँच चुकी है तथा और भी बहुत से यंत्रों का प्रसार होता जा रहा है। इसलिए 'जंतसर" (जाँत के गीत) तथा कुछ अन्य श्रम संबंधी गीतों की कमी होती जा रही है।

इसी तरह वर्तमान युग की घटनाएँ भी इसमें स्वीकार की जा रही हैं। झाँसी की रानी कुँवर सिंह, गांधी जी सुभाषचंद्र भगत सिंह, खुदीराम एवं चंद्रशेखर आजाद आदि लोकसाहित्य में प्रतिष्ठा के साथ जीवित हैं। ये वीर सेनानी उसी कड़ी में जोड़े गए हैं. जिनमें प्राचीन काल के वीरों के नाम आते हैं।

साहित्य और समाज

यह संसार एक समाज है जो हमेशा साहित्य समाज के हित की कामना करता है। यदि समाज शरीर है तो साहित्य उसकी आत्मा। अगर देखा जाए तो साहित्य मनुष्य के मस्तिष्क से उत्पन्न होता है, क्योंकि मनुष्य समाज का अभिन्न अंग हैं। जन्म से मृत्यु तक मनुष्य समाज से जुड़ा रहता है, वह चाह कर भी समाज से अलग नहीं हो सकता है। उसका पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा तथा जीवन का निर्वाह समाज द्वारा ही होता है। मनुष्य समाज में रहकर अनेक प्रकार का अनुभव ग्रहण करता है, और जब वह प्राप्त अनुभव को शब्द द्वारा अभिव्यक्त करता है तो वह साहित्य बन जाता है। और यही अभिव्यक्ति की शक्ति उस व्यक्ति को आगे चलकर साहित्यकार बना देती है। अतः जैसा समाज होता है, वैसी ही साहित्यकार की रचना होती है, और वैसे ही समाज की झलक उस साहित्यकार में देखने को मिलता है। साहित्य एवं समाज का संबंध युगों-युगों से देखा गया है; दूसरे अर्थ में कहे तो साहित्य एवं समाज एक ही सिक्के के दो पहलू एवं एक दूसरे के पूरक भी हैं। साहित्य का सृजन समाज के लिए एवं समाज द्वारा ही होता है इसीलिए तो कहते हैं, साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य का सृजन मानव पटल में होता है क्योंकि यह एक कला है।

यह कल्पना द्वारा पूर्ण होता है। परन्तु मानव कल्पना को जीवन एवं जगत के अनुभव से प्राप्त करता है और वह अनुभव उसे समाज से मिलता है। इसी कारण प्रसिद्ध ग्रग्रेस आचार्य एरिस टोटल ने साहित्य को जीवन एवं जगत का अनुकरण मानते थे। उनके मतानुसार साहित्य, जीवन एवं जगत का नकल है। जीवन एवं जगत में हो रहे घटनाओं की साहित्यकार अपनी कल्पना से नकल करता है एवं फिर से उसी समाज को लौटा देता है। साहित्यकार जिस समाज एवं वातावरण में रहते हैं उस समाज एवं वातावरण की सभी स्थितियाँ उसे हमेशा प्रभावित करते रहता है। साहित्यकार अपने रचना के जरिए जो भी समाज को देना चाहता है, उसे वह बड़ी ही चतुराई से समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है।

समाज का उत्थान-पतन, समाज की रीति-रिवाज, आस्था एवं संस्कृति स्पष्ट रूप में साहित्य में अपना प्रभाव डालता रहता है।

साहित्य भी समाज के परिवर्तित स्वरूप के साथ बदलता रहता है। आधुनिक संदर्भ में भी साहित्य एवं समाज में परस्पर संबंध है। दोनों एक-दूसरे के लिए बने हैं। समाज में हो रहे विसंगति एवं विकृति, प्रगति, उपलब्धि, अभाव, विसमता, समानता, सौंदर्यता, प्रेम, स्नेह, मातृत्व, देशप्रेम, विश्व बंधुत्व जैसे विविध पक्षों को साहित्यकार अपने साहित्य में सृजित करते हैं, जो नितांत लोकहित के लिए होता है। जिस प्रकार से समाज का प्रभाव साहित्य के ऊपर पड़ता है वैसे ही साहित्य का प्रभाव समाज पर भी पड़ता है। क्योंकि कवि अथवा लेखक समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं, अतः वे लोग समाज को अपने नवीन विचार प्रदान करते रहते हैं। जब समाज में कोई समस्या आती हैं, समाजिक जीवन मूल्य का पतन होने लगता है तब साहित्य ही उसे दूर करने में अपनी भूमिका निर्वाह करता है। ऐसे समय में साहित्यकार समाज को नया रास्ता दिखाने का काम करता है। साहित्य के द्वारा राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों को देखा जाता है। आज विश्व में धार्मिक कट्टरता, सांप्रदायिकता, अलगाववाद तथा आतंकवाद गंभीर समस्याओं के विनाश के लिए साहित्य प्रयत्नशील है। साहित्यकार साहित्य का सृजन अपने स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि समाज के उपयोग के लिए करता है।

साहित्य सृजन के लिए साहित्यकार विषयवस्तु समाज के ही विभिन्न पक्षों से लेता है। चाहे वह ऐतिहासिक, पौराणिक या फिर समाजिक विषयवस्तु क्यों न हो। यह सभी विषयवस्तु का समाज में ही सृजन होता है और इसी से साहित्यकार अपने दृष्टिकोण द्वारा समाज को उसके मूल्यांकन एवं विश्लेषण करने का अवसर प्रदान करता है। प्राचीनकाल से आज तक साहित्यकार समाज के प्रत्येक परिवर्तनों को देखते आया है इसी से यह प्रमाणित होता है कि साहित्य का सृजन एवं समाज की भूमिका एक दूसरे का पूरक है। प्रत्येक समाज का अपना अलग रहन-सहन, परंपरा, संकृति, संस्कार और इतिहास है पर साहित्य इन सभी बातों को समेटकर प्रत्येक समाज के घटना को दूसरे समाज से आदान-प्रदान करता है।

साहित्य हमेशा मानव को सकारात्मक सोच के साथ-साथ समाज के लिए मनुष्य को कुछ करने की प्रेरणा प्रदान करता है। राष्ट्रप्रेम की भावना जागृत कराता है और वसुधैव कुटुम्बकम की भावना विकसित करता है। यह संसार मानव समाज का घर है । अपने साहित्य सृजन में विषयवस्तु के अतिरिक्त पात्रों को भी लेखक समाज से ही चुनता है। समाज से लिया गया पात्र किसी विशेष समाज का प्रतिनिधित्व करने के साथ-साथ कतिपय पात्र विश्वजनित बन जाता है, जो समाज को कुछ न कुछ संदेश दे रहा होता हैं।

किसी भी समाज को निकट से पहचानने का जरिया ही साहित्य है। प्राचीन भारत के वैभवपूर्ण संस्कृति को वेद, पुराण, रामायण, महाभारत जैसे साहित्य रचना ने ही पहचान दिया है, तो ग्रीस के सभ्यता को ओडिसी एवं इलियट जैसे ग्रन्थों ने पहचान देने का काम किया है। समाज एवं साहित्य मानव सभ्यता के वह पक्ष हैं जो एक दूसरे के बिना पूरा नहीं हो सकता। अतः कोई एक पक्ष कमजोर होने पर उस समाज के उत्थान एवं प्रगति के क्रम में बाधा आ सकती है।

निष्कर्ष

लोक साहित्य किसी देश के सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास का मौखिक दस्तावेज होता है। इसमें समस्त लोकजीवन का सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आशा-निराशा रूप प्रतिबिम्बित होता है। लोक साहित्य की प्रमुख विधाओं में लोकगीत का स्थान सर्वोपरि है। लोकगीतों में मानव सभ्यता व संस्कृति का रूप अंकित रहता है।

कुल मिलाकर लोक संस्कृति ही भारतीय संस्कृति की जड़ है। जिसके रस से भारतीय संस्कृति का पौधा पल्लवित पुष्पित और सुफलित है। अतः वर्तमान समय में लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति की परम्परा की प्रासंगिकता एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य को बनाए रखने तथा इसके संरक्षण एवं संवर्धन के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर प्रयास अवश्य होने चाहिए।

सन्दर्भ

1. लोक साहित्य विज्ञान, डॉ० सत्येन्द्र
2. भारतीय संस्कृति में लोक जीवन की अभिव्यक्ति, महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज, एम.ए. सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक पृष्ठ- २४, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1973
3. मुंडा लोकगीत एवं सांस्कृतिक जीवन
4. पर्यावरण चेतना के बुन्देली लोकगीत
5. लोकगीत जन इतिहास का निरूपण करते हैं (सम्पादकीय, लोकरंग)
6. लोक साहित्य का स्वर्णयुग आने वाला है डॉ. अर्जुनदास केसरी
7. भारतीय साहित्य की पहचान (गूगल पुस्तक लेखक सियाराम तिवारी
8. युग के माध्यम से भारतीय साहित्य सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र)
9. भारतीय साहित्य की अवधारणा (प्रो ऋषभ देव शर्मा)
10. भारतीय साहित्य की भूमिका (गूगल पुस्तक लेखक डॉ रामविलास शर्मा

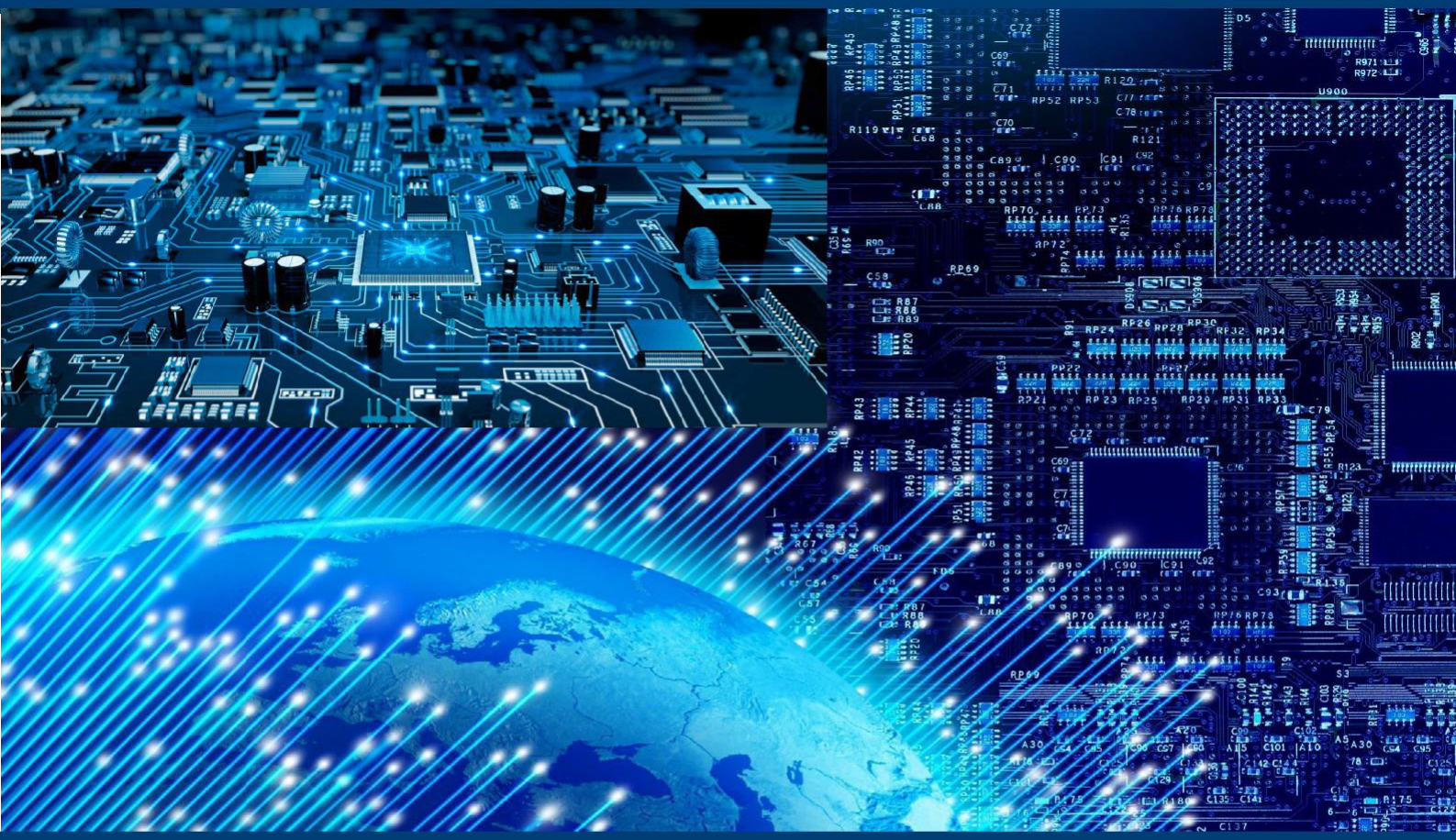

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| Mobile No: +91-9940572462 | Whatsapp: +91-9940572462 | ijarasem@gmail.com |